<u>गीतफ़रोश: एक आलोचनात्मक व्याख्या</u>

यह कविता भवानी प्रसाद मिश्र द्वारा लिखी गई है जो अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा सप्तक' में संकलित है | 'दूसरा सप्तक' में हमें भवानी प्रसाद मिश्र जी की ग्यारह कविताएँ मिलती हैं जिनमे से यह आख़िरी से पहले की कविता है | इसी पुस्तक के 'वक्तव्य' में कवि ने अपनी इन कविताओं पर जो टिप्पणी की है उससे हमें इन कविताओं की रचना-प्रक्रिया एवं काव्यगत विशेषताओं का कुछ-कुछ अंदाज़ा होता है | कवि लिखता है "दूसरा सप्तक की मेरी कविताएँ मेरी ठीक प्रतिनिधि कविताएँ नहीं हैं | जगह की तंगी सोचकर मैंने छोटी-छोटी कविताएँ ही इसमें दी हैं | 'आशा गीत', 'दहन-पर्व', 'अश्रु और आश्वास', 'बँधा सावन' और ऐसी अन्य लंबी कविताएँ अगर पाठकों के सामने पेश कर सकता तो ज़्यादा ठीक अंदाज़ उन से लगता | बहुत मामूली रोज़मर्रा के सुख दुःख मैंने इन में कहे हैं, जिन का एक शब्द भी किसी को समझाना नहीं पड़ता |"(दूसरा सप्तक, पृ.-21)

प्रश्न यह है कि 'गीतफ़रोश' नामक इस कविता में कवि के रोज़मर्रा के कौन से सुख- दुःख हैं? कविता के कथ्य का जब हम विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि 1951 के आस-पास लिखी गई इस कविता में कवि जिसे अपनी रोज़मर्रा के सुख-दुःख बता रहा है वह आने वाली भूमंडलीकृत जगत में एक बड़ी समस्या बनने वाली है | कवि का दुःख है- 'बाज़ार में साहित्य की स्थिति' | बाज़ार मनुष्य के जीवन में किसी- न- किसी रूप में प्राचीन काल से रहा है परन्तु आज जैसी उसकी क्रूरतम भूमिका है, शायद पहले कभी न थी | इसने साहित्य को भी खरीदने और बेचने वाली वस्तु में तब्दील कर दिया है और इसी बात को अपनी इस कविता में भवानी प्रसाद मिश्र जी विडंबनात्मक लहज़े में अभिव्यक्त करते हैं |

'फ़रोश' फ़ारसी का प्रत्यय है जिसका अर्थ है- 'बेचने वाला' | कवि कविता में स्वयं को 'गीत बेचनेवाला' कहता है और कविता के लिए 'माल' शब्द का प्रयोग करता है | दोनों ही शब्द बाज़ार की शब्दावली से लिए गए हैं | कवि लगभग अपनी पूरी कविता में यह

दावा करता रहता है कि वह हर तरीक़े के गीत लिख सकता है, जिसे बाज़ार को ज़रुरत है | साथ ही कवि की स्वीकारोक्ति भी है कि-

"जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझ को

पर पीछे-पीछे अक़्ल जगी मुझ को;

जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान |"

वर्तमान समय में देखें तो कवि की यह स्वीकारोक्ति पूंजीवादी युग में साहित्य की स्थिति पर एक बयान है |

मिश्र जी की यह कविता वर्तमान समय में साहित्य की स्थिति से ज़्यादा साहित्यकारों की भूमिका पर व्यंग्य करती नज़र आती है | पूरी कविता में जो गीतों की विभिन्न कोटियाँ दिखाई पड़ रही हैं, उससे कविता के व्यापक फ़लक का भी पता चलता है और हास्य-रस की भी सृष्टि होती है लेकिन साथ ही एक बात और भी पता चलती है, वह यह कि वह कौन कवि है जो एक साथ 'रेशमी' के भी गीत लिख रहा है और 'खादी' के भी | वह कौन कवि है जो 'अमर गीत' लिख सकता है लेकिन 'मरणशील कविता' लिखने को तैयार है? इस बाज़ारवादी परिवेश में यदि साहित्य-जगत में सबसे पहले कुछ मरा है, तो वह है- 'साहित्यकार की प्रतिबद्धता' | साहित्यकार की प्रतिबद्धता अब किसी निश्चित विचारधारा पर नहीं टिकी है बल्कि सबकुछ 'ऑन डिमांड' हो चुका है | इस 'कमीशंड लेखन' ने निश्चित तौर पर साहित्य की साहित्यिकता का दर्ज़ा कुछ नीचे ही किया है | बात यहीं तक नहीं रुकती कि कवि अनुरोध पर कुछ गीतों की सृष्टि कर रहा है; असली समस्या यह है कि कवि अपने इस 'माल' को लेकर बाज़ार में दर-ब-दर ठोकरें खा रहा है और 'गाहक' अपने चिर-परिचित नखरे दिखा रहा है | कविता की व्यंग्यात्मक पंक्तियाँ हैं-

"इन दिनों की दुहरा है कवि-धंधा,

हैं दोनों चीज़ें व्यस्त, कलम, कन्धा |

कुछ घंटे लिखने के, कुछ फेरी के

जी, दाम नहीं लूँगा इस देरी के |"

बाज़ारीकृत साहित्यिक परिवेश की एक और समस्या की ओर मिश्र जी कविता के अंतिम हिस्से में संकेत करते हैं | काव्यपंक्तियाँ हैं-

"जी बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ,

गाहक की मर्ज़ी- अच्छा, जाता हूँ |

मैं बिलकुल अंतिम और दिखाता हूँ -

या भीतर जाकर पूछ आइये, आप |"

वर्तमान परिवेश यह है कि जिस गति से साहित्य का 'उत्पादन' हो रहा है उस गति से 'गाहक' की संख्या में भी विस्तार हो रहा है क्योंकि भीतर में भी एक ग्राहक है और बाहर के ग्राहक की चेतना भीतर के ग्राहक से जुड़ी हुई है |

कविता का पाठ बिलकुल कहानी के ढंग से करें तो कविता के अंत में एक बात ग़ौरतलब है कि कवि अपनी कविता को बाज़ार में मनोवांछित तरीके से बेच भी नहीं पाता | कवि की क्षोभ से भरी पंक्तियाँ हैं-

"मैं बिलकुल अंतिम और दिखाता हूँ -

या भीतर जाकर पूछ आइये, आप |"

1951 ईस्वी के आस-पास के समय में यह संभव था परन्तु समकालीन परिवेश में कविता बाज़ार में धड़ल्ले से बिक रही है और साहित्य और बाज़ार के इस बनते-बिगड़ते रिश्ते में 'सत्य का संधान' कहीं पीछे छूट रहा है | कविता के अंतिम हिस्से में कवि की गांधीवादी चेतना ईमानदार स्वीकारोक्ति के साथ-साथ स्थिति का निर्मम विश्लेषण भी करती है-

"है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप;

क्या करूँ मगर लाचार हार कर

गीत बेचता हूँ |

जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ |"

'गीतफ़रोश' कविता की प्रसिद्धि में इसके कथ्यगत सौंदर्य का जितना योगदान है उतना ही इसके अनूठे शिल्प का भी है | मिश्र जी की यह कविता सरसरी निगाह में तो अतिरंजित एवं अतिकथन से बोझिल लगती है परन्तु पूरी कविता के लय को पकड़ने के बाद यह लगता है कि यह उनकी चिर-परिचित लोकगीत की शैली है जो सम्प्रेषणीयता के स्तर पर भी अद्वितीय है | चार अनुच्छेदों की इस कविता का मूल टोन एक ही है, जिसमे कथन के सम्प्रेषण पर ज़ोर है | मिश्र जी की अन्य कविताओं की तरह ही इस कविता की शिल्प की एक प्रमुख विशेषता इसकी सादगी है | कविता अपनी 'बौद्धिकता' (जो कि 'नयी कविता' की एक त्याज्य विशेषता थी) कहीं भी ज़ाहिर नहीं करती, बल्कि सादे ढंग से अपने मर्म को पाठक के अंतर में उतार देती है | व्यंग्य और विडम्बना इस कविता की एक और प्रमुख ताकत है | व्यंग्य अपने आप में कुछ नहीं है यदि व्यक्ति के जीवन की विडम्बनाओं को न दर्शाए | ऊपरी कलेवर में यह कविता जो सामान्य व्यंग्य को दिखाती है; गहरी अंतर्धारा में साहित्य के विडंबनात्मक पहलू का भी साक्षात्कार भी कराती है | कविता में फ़ारसी, अंग्रेजी और लोक में रँगे शब्दों की बहुतायत है क्योंकि कवि का मुख्य उद्देश्य है- भाषिक सहजता | कविता की कथन-भंगिमा भी ऐसी है कि लगता है कवि अपने पाठक से सीधे-सीधे बातें कर रहा हो | अपने काव्य-संग्रह 'बुनी हुई रस्सी' की भूमिका में मिश्र जी लिखते हैं, "लिखने में आविष्कार मेरा बोलना है | मैं जो लिखता हूँ उसे जब बोलकर देखता हूँ और बोली उसमें बजती नहीं है तो मैं पंक्तियों को हिलाता-डुलाता हूँ | बोलचाल की हिंदी ही मेरी ताकत है |" यह बोलचाल की हिंदी मिश्र जी की अन्य कविताओं की भी ताकत है और इस कविता की भी |

डॉ. कुमार धनंजय

सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)

पटना विमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना |

डॉ. कुमार धनंजय

डॉ. कुमार धनंजय